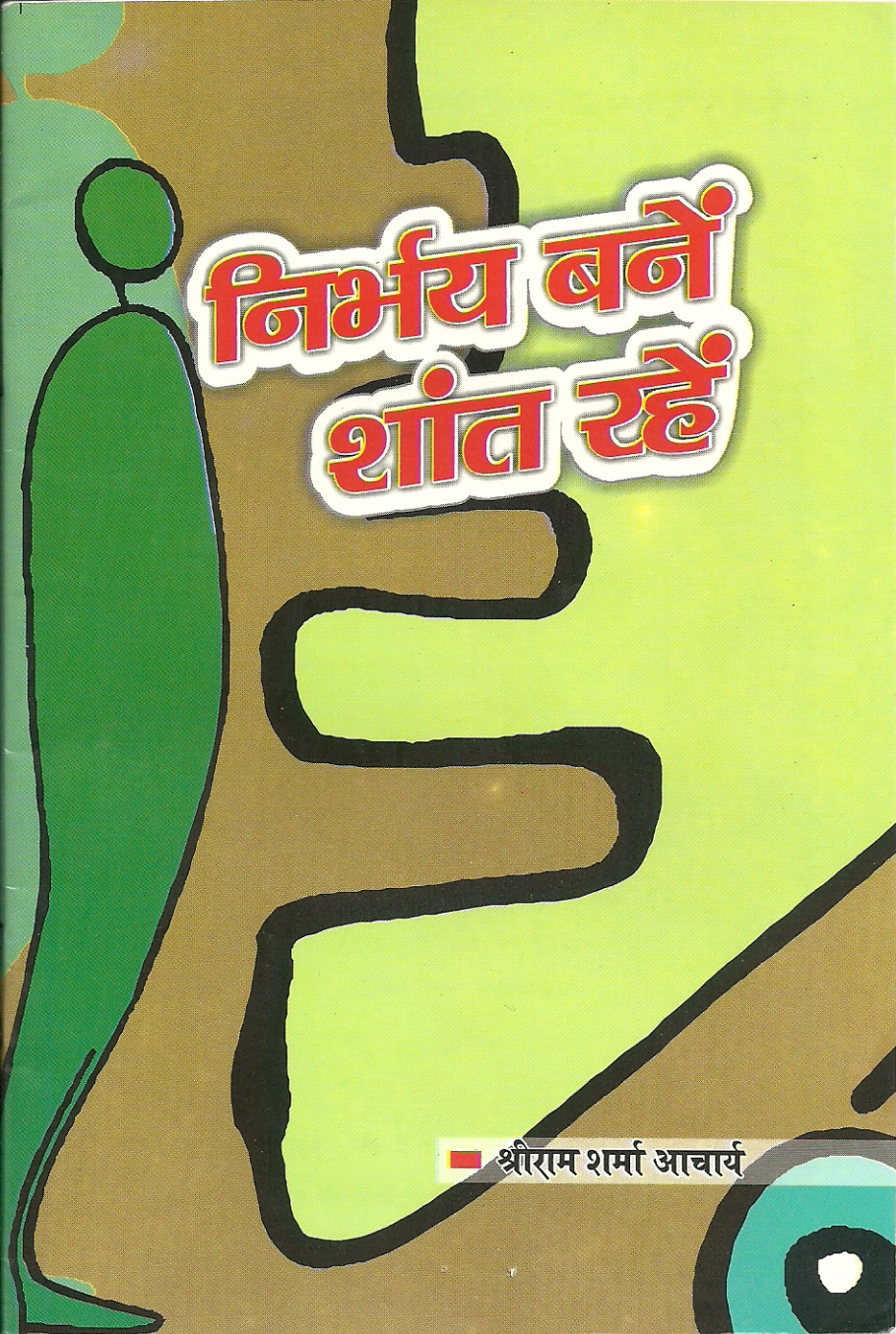

निर्भय बनें शांत रहें

श्रीराम शर्मा आचार्य

निर्भय बनें, शांत रहें

गायत्री परिवार साहित्य विक्रय केन्द्र
४, तृप्ता सदन, शांता वाडी,
बोम्बे बाजार के पास की गल्ली,
जे. पी., रोड,अंधेरी (प.), मुंबई-58.
फोन:26250289/26245707,मो.:9820418659.

लेखक :

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१० मूल्य : ६.०० रुपये

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि

लेखक :
श्रीराम शर्मा आचार्य

पुनरावृत्ति सन् २०१०

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

हम अशांत और आतंकित न हों

कितना ही प्रयत्न करने पर भी, कितनी ही सावधानी बरतने पर भी, ऐसा संभव नहीं कि मनुष्य के जीवन में अप्रिय परिस्थितियाँ प्रस्तुत न हों। यहाँ सीधा और सरल जीवन किसी का भी नहीं है। अपनी तरफ से मनुष्य शांत, संतोषी और संयमी रहे, किसी से कुछ भी न कहे, कुछ न चाहे, तो भी दूसरे लोग उसे शांतिपूर्वक समय काट ही लेने देंगे—इसका कोई निश्चय नहीं। कई बार तो सीधे और सरल व्यक्तियों से अधिक लाभ उठाने के लिए दुष्ट, दुर्जनों की लालसा और भी तीव्र हो उठती है। कठिन प्रतिरोध की संभावना न देखकर सरल व्यक्तियों को सताने में दुर्जन कुछ न कुछ लाभ ही सोचते हैं। सताने पर कुछ न कुछ वस्तुएँ मिल जाती हैं और दूसरों को आतंकित करने, डराने का एक उदाहरण उनके हाथ लग जाता है।

हम सब के शरीर अब जैसे कुछ बन गए हैं उनमें पग-पग पर कोई बीमारी उठ खड़ी होने की आशंका रहती है। प्रकृति का संतुलन एटमबमों के परीक्षणों से, वृक्ष-वनस्पतियों के नष्ट हो जाने से, कारखानों के धुएँ से हवा गंदी होते रहने से बिगड़ता चला जा रहा है। उसके कारण दैवी विपत्ति की तरह कई बार बीमारियाँ फूट पड़ती हैं और संयमी लोग भी अपना स्वास्थ्य खो बैठते हैं। खाद्य पदार्थों का अशुद्ध स्वरूप में प्राप्त होना, उनमें पोषक तत्त्व घटते जाना, आहार-विहार की अप्राकृतिक परंपरा के साथ घसीटते चलने की विवशता आदि कितने ही कारण ऐसे हैं जो संयमी लोगों को भी बीमारी की ओर घसीट ले जाते हैं।

कौन ऐसा है जिसे प्रियजनों की मृत्यु का शोक सहन नहीं करना पड़ता? इस नाशवान दुनिया में सभी तो मरणधर्मा होकर जन्मे हैं। मरघटों में चिताएँ सुलगती ही रहती हैं। जन्म की भाँति मृत्यु भी इस

संसार की एक सुनिश्चित सचाई है। अपने घर के, अपने परिवार के, अपने प्रिय समाज के, कोई न कोई स्वजन-स्नेही मरेंगे ही और मरने पर शोक-संताप होगा ही। माताओं को अपनी गोदी के खेलते हुए प्राणप्रिय बच्चों का शोक सहना पड़ता है। पत्नियाँ अपने जीवनाधार पतियों का अरथी पर कसा जाना देखती हैं। मित्र, मित्र से बिछुड़ते हैं। भाई-बहन, साले-बहनोई, दामाद, पिता-माता, बेटे-पोते आगे-पीछे समय-असमय मरते ही रहते हैं। जिनके ऊपर बीतती है वे उसे वज्रपात जैसा समझते हैं बाकी लोग उसे एक बहुत छोटी-सी नगण्य घटना, क्षणिक कुतूहल मात्र मानकर दिखावटी सहानुभूति प्रकट करते हुए उपेक्षा करते रहते हैं। यह क्रम संसार में अनादिकाल से चला आ रहा है।

परिस्थितियाँ मनुष्य को स्थान परिवर्तन करने के लिए भी विवश करती रहती हैं। नौकरी वालों की बदली होती रहती है। व्यापार, शिक्षा या अन्य कार्यों के कारण पति-पत्नी को अलग-अलग रहना पड़ता है। हवा के झोंके में उड़ते हुए सूखे पत्तों की तरह परम स्नेही मनुष्य भी कई बार वहाँ से वहाँ चले जाते हैं और उनका विछोह कसकता रहता है। आर्थिक हानियों के अवसर बुद्धिमान के सामने भी आते रहते हैं। चतुर व्यापारी कई बार ऐसे उतार-चढ़ावों के बीच फँस जाते हैं कि उन्हें अपनी आजीविका और प्रतिष्ठा दोनों से ही हाथ धोना पड़ता है। दैवी प्रकोप से अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, भूकंप, बाढ़, अग्निकांड, चोरी, डकैती, कमाऊ व्यक्ति की मृत्यु, प्रतिस्पर्द्धा, भावों की तेजी-मंदी, विश्वासघात, ठगी आदि कितने ही आकस्मिक कारण ऐसे हो सकते हैं जिनके कारण अनायास ही बहुत बड़ा आर्थिक आघात लगे और उसके फलस्वरूप भारी हानि उठानी पड़े, चलती हुई गाड़ी पटरी पर से उतर जाए और अप्रत्याशित परिस्थितियों का सामना करना पड़े।

परीक्षा की तैयारी में लगे हुए छात्रों में से ३५-४० प्रतिशत उत्तीर्ण और ६०-६५ प्रतिशत अनुत्तीर्ण होते हैं। नौकरी के लिए खाली जगहों में एक स्थान के पीछे १०० अरजी पहुँचती हैं। स्थान तो एक को मिलता है, बाकी ९९ को तो निराश रहना पड़ता है। कितने ही प्रेम—अभिनयों का दु:खद अंत होता है। सुनहरे सपने परिस्थितियों की ठोकर खाकर चूर-चूर हो जाते हैं। इस प्रकार असफलता, निराशा, हानि, चिंता, प्रतिकूलता और परेशानी के अवसर हर मनुष्य के सामने छोटे या बड़े रूप में आते ही रहते हैं। उनसे पूर्णतया सुरक्षित रहना किसी के लिए भी संभव नहीं। इच्छा या अनिच्छा से प्रतिकूलताओं का सामना करना ही पड़ता है। रोकर या हँसकर उन्हीं को ही भुगतना पड़ता है।

मानसिक दृष्टि से दुर्बल और भावावेश में बहने वाले व्यक्ति इन छोटी-छोटी प्रतिकूलताओं में अपना संतुलन खो बैठते हैं और परेशानी में ऐसे बौखला जाते हैं कि उनका मस्तिष्क विक्षिप्त एवं उद्विग्न होकर ऐसी विपन्न स्थिति में जा पहुँचता है कि क्या करना, क्या न करना यह वे बिलकुल भी नहीं सोच पाते। ऐसी स्थिति में वे जो भी कदम उठाते हैं वह प्राय: गलत ही होता है। विक्षोभ की स्थिति में किए हुए निर्णय आमतौर से ऐसे होते हैं जिनमें विपत्ति से निकलने का मार्ग नहीं मिलता वरन उलटे कठिनाइयों के और अधिक गहरे दलदल में फँस जाने का खतरा सामने आ खड़ा होता है। कई बार लोग घर छोड़कर भाग निकलने, आत्महत्या कर लेने, कपड़े रँगकर बाबाजी हो जाने आदि की ऐसी गलतियाँ कर बैठते हैं जिन पर पीछे केवल पश्चात्ताप ही करना शेष रह जाता है। कई बार उद्विग्न लोग उन पर बरस पड़ते हैं जिन्हें वे अपनी प्रतिकूलता का कारण समझते हैं। गाली-गलौज, मार-पीट, फौजदारी, कत्ल आदि की दुर्घटनाएँ प्राय: आवेश की स्थिति में ही की जाती हैं और पीछे इनकी प्रतिक्रिया में इतनी हानि उठानी पड़ती

है जो इस कारण से भी अधिक मँहगी पड़ती है जिसके लिए यह सब किया गया था।

कहते हैं कि विपत्ति अकेली नहीं आती, वह अपने साथ और भी अनेकों मुसीबतें लिए आती है। कारण स्पष्ट है कि प्रतिकूलता से घबराया हुआ मनुष्य यह सोच नहीं पाता कि अब उसे क्या करना चाहिए। साधारण-सी कठिनाइयों से पार होने में ही काफी धैर्य, सूझ-बूझ और दूरदर्शिता की आवश्यकता पड़ती है, फिर कुछ अधिक परेशानी हो तब तो और भी अधिक सही मानसिक संतुलन अभीष्ट होता है। यह न रहे तो विपत्तिग्रस्त मनुष्य किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर प्रायः वह करने लगता है जो न करना चाहिए था। फलस्वरूप विपत्ति की कई शाखाएँ फूट पड़ती हैं और कठिनाई का नया दौर आरंभ हो जाता है। जब कभी ठंढे मस्तिष्क से विचार करने का अवसर आता है तब मनुष्य पछताता है और सोचता है कि आगत विपत्ति नहीं टल सकती थी तो कोई बात न थी। अपने मानसिक संतुलन को विवेक द्वारा बचाया ही जा सकता था और जो परेशानियाँ अपनी भूलों के कारण सिर पर ओढ़ ली गईं उनसे तो बचा ही जा सकता था।

घर में किसी की मृत्यु हो गई, एक प्रिय पात्र चला गया, उसके जाने से हानि भी हुई, धक्का भी लगा और शोक के कारण रुलाई भी आई। पर यदि लगातार रोते ही रहा जाए, भोजन त्याग दिया जाए, मूर्छित पड़े रहा जाए, उस शोक को ही स्मरण रखा जाए तो परिणाम एक ही होता है कि रहे-सहे स्वास्थ्य का नाश और उस गड़बड़ी में साधारण कार्यक्रमों के नष्ट होने से दूनी विपत्ति का उद्भव। कमजोर आँखों वाले अधिक रोते रहें तो उनकी आँखों की रोशनी चली जाती है। दिल की धड़कन, ब्लड-प्रेशर, अनिद्रा, उन्माद, मूर्च्छा, अपच, उलटी, सिर-दरद आदि अनेकों नए रोग उठ खड़े होते हैं। दूसरे लोग उस शोक-संताप को समझाने-बुझाने या उसकी सहानुभूति में लगे रहते

हैं और साधारण व्यवस्था को भूल जाते हैं तो दूसरी ओर से भी काम बिगड़ते हैं। दुधारू पशु समय पर न दुहे जाने, चारा-पानी ठीक प्रकार न मिलने से दूध देना बंद कर देते हैं, बिना देखभाल के खेती या व्यापार खराब होता है। बच्चे परेशान होते हैं। चोरों की ऐसे ही मौके पर घात लगती है। दुश्मनों को हँसने का मौका मिलता है। उस मृत्यु के कारण उत्पन्न हुए नए कामों और उत्तरदायित्वों के निबाहने के लिए जो महत्त्वपूर्ण हेर-फेर करने आवश्यक होते हैं वह भी नहीं सूझ पड़ते। इस प्रकार वह मृत्यु-शोक अपने साथ अनेकों नई विपत्तियाँ उत्पन्न करने वाला सिद्ध होता है।

यदि दूरदर्शिता के साथ यह सोच लिया गया होता कि घटित हुई घटना अब लौट नहीं सकती, गया हुआ व्यक्ति आ नहीं सकता, अंततः शोक को समाप्त करके साधारण क्रम अपनाना ही पड़ेगा, तो उस कार्य को बिना अधिक क्षति उठाए और बिना अधिक समय गँवाए ही पूरा क्यों न कर लिया जाए? इस प्रकार सोचने वाले अपना मन सँभालते हैं, धैर्य, विवेक, संतोष और दूरदर्शिता से काम लेते हैं। शोक घटाकर संतुलन ठीक करते हैं और स्वाभाविक जीवन की व्यवस्था जल्दी ही बना लेते हैं। ऐसे लोग अनावश्यक रूप में स्वयं उत्पन्न की गई विपत्ति से बच जाते हैं।

असफलता के समय दिल छोटा करने और निराश होने की क्या बात है। प्रथम प्रयास अवश्य ही सफल होना चाहिए, यह कोई जरूरी नहीं। संसार में प्रयत्नशील व्यक्ति भी दो तिहाई असफलता और एक तिहाई सफलता का अनुमान लगाकर काम करते हैं। उसी पर संतोष करते और उतना ही पर्याप्त भी मानते हैं। एक परीक्षा में एक बार फेल हो जाना कोई ऐसी विपत्ति नहीं है जिसके लिए अत्यधिक चिंतित और निराश हुआ जाए। अब की बार फेल होने पर दो वर्ष की तैयारी में अच्छा डिवीजन मिल सकता है और आगे की नींव पक्की हो सकती

है। जिंदगी इतनी लंबी है कि उसमें दो-चार असफलताओं के लिए भी जगह रखनी पड़ती है।

हर काम में सदा सफलता ही मिलती रहे तब तो मनुष्य, मनुष्य न रहकर देवताओं की श्रेणी में गिना जाने लगे। यह सोचकर परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने वाले अपना साहस समेटकर रह सकते हैं और उस खिन्नता को भुलाकर दूने उत्साह से अगली तैयारी में लग सकते हैं। इस बार नौकरी न मिली, इस जगह पर नियुक्ति न हुई, तरक्की का अबकी बार अवसर न मिला तो आगे मिलेगा। इसमें हतोत्साह होने की कौन-सी बात है? उन्नति के लिए प्रयत्न करना चाहिए, पर जो परिणाम सामने आवे उसे संतोष और धैर्यपूर्वक हँसते, मुस्कराते हुए शिरोधार्य ही करना चाहिए।

आर्थिक घाटा हो गया तो हैरानी की क्या बात है? अपने पास यदि क्षमता, प्रतिभा, साहस, पुरुषार्थ और कौशल मौजूद है तो आज न सही चार दिन बाद फिर आवश्यक साधन जुट जाएँगे। न भी जुट जाएँ तो थोड़ा स्तर (स्टेण्डर्ड) घटाकर कम खरच में भी अच्छा-खासा जीवन जिया जा सकता है। गरीब लोग भी तो आनंद और उल्लास की जिंदगी जीते हैं, फिर हम भी वैसा क्यों न कर सकेंगे? खरचों में कमी कर डालने से गरीबी अखरने वाली नहीं रहती। समय ने हमारी आमदनी पर कुल्हाड़ा चलाया तो हम अपने खरचों में काट-छाँटकर आसानी से उस असंतुलन को पूरा कर सकते हैं। समय के अनुरूप अपने स्तर को घटा लेने का साहस जिसमें मौजूद है, जिसे हल्के दरजे की मजदूरी में अपना गौरव नष्ट होते नहीं दीखता, उसके लिए घाटे की स्थिति में भी परेशानी का कोई कारण नहीं।

परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढाल लेने का जीवन विज्ञान जिनने सीखा है उनके लिए अमीरी की तरह गरीबी में भी हँसने और प्रसन्न रहने का कारण मौजूद है। जिन्हें श्रम करने में शरम नहीं आती,

जिनने प्रयत्न, पुरुषार्थ, साहस और उल्लास को नहीं खोया है वे आजीविका का उपयुक्त मार्ग आज नहीं तो कल प्राप्त कर लेंगे। कल बंगला देश एवं पंजाब में सब कुछ खोकर आए हुए और आज ठीक प्रकार जीवनयापन करने वाले शरणार्थी भाइयों का उदाहरण हमारे सामने है। अधीरता तो कायर का चिह्न है। मुफ्त की मौज उड़ाने वाले हरामखोर हानि का रोना रोएँ यह तो बात समझ में आती है, पर जिनकी नसों में पुरुषार्थ मौजूद है वह तो जमीन में लात मारकर कहीं से भी पानी निकाल लेगा। वह क्यों निराश होगा, वह क्यों सिर धुनेगा? लक्ष्मी पुरुषार्थ की चेरी है। जिसके पास पुरुषार्थ है उसको लक्ष्मी के चले जाने की चिंता क्यों करनी चाहिए?

मतभेद के, लड़ाई-झगड़े के कई कारण हो सकते हैं। ठंढे मस्तिष्क से शांत चित्त से विचार विनिमय कर लें तो हम उनमें से कितनों को ही चुटकी बजाते सुलझा सकते हैं। उत्तेजित दिमाग तिल को ताड़ बना देता है और राई को पर्वत बनाता है। संशय, अविश्वास और विक्षोभ से भरा हुआ मन दूसरों में अगणित प्रकार के दुर्भावों की कल्पना किया करता है। उन्हें दूसरे सभी दुष्ट, दुर्जन, द्वेष रखने वाले, स्वार्थी आक्रमणकारी दीखते रहते हैं। पर यदि चढ़े हुए दिमाग का पारा नीचे उतार लिया जाए तो लगेगा कि मतभेद के कारण बहुत ही छोटे थे। कुछ अपने को सुधारकर, कुछ उन्हें समझा-बुझाकर ठीक रास्ता आसानी से निकल सकता है। समझौता करके मिल-जुलकर समन्वय और सहिष्णुता की—सहअस्तित्व की नीति पर चलते हुए मतभेद रखने वाले लोगों के साथ भी गुजारा करने का रास्ता निकल सकता है।

आवेश में और उत्तेजना में कहे हुए कोई कटु शब्द हमें भुला ही देने चाहिए। जूड़ी,सन्निपात में बक-झक करने वाले रोगी की बातें कौन स्मरण रखता है? किसी नासमझी या गलत-फहमी के कारण यदि कभी कुछ कटु वचन किसी ने कह दिया तो उसे स्मरण रखे रहने से कुछ लाभ नहीं। स्वाभाविक स्थिति प्रेम-सहयोग और सहिष्णुता की ही है। वही हमें अपने प्रियजनों के बीच बनाए रखनी चाहिए और

वही नीति संबंधित सर्वसाधारण के साथ बरतनी चाहिए। अपनी ओर से मीठे और सज्जनतापूर्वक वचन बोलते रहने और शिष्ट व्यवहार करते रहने से लड़ाई-झगड़े का बहुत-सा आधार अपने आप ही नष्ट हो जाता है।

भविष्य की आशंकाओं से चिंतित और आतंकित कभी नहीं होना चाहिए। आज की अपेक्षा कल और भी अच्छी परिस्थितियों की आशा करना, यही वह संबल है जिसके आधार पर प्रगति के पथ पर मनुष्य सीधा चलता रह सकता है। जो निराश हो गया, जिसकी हिम्मत टूट गई, जिसकी आशा का दीपक बुझ गया, जिसे अपना भविष्य अंधकारमय दीखता रहता है, वह तो मृतक समान है। जिंदगी उसके लिए भार बन जाएगी और वह काटे नहीं कटेगी। यह दुनिया कायरों और डरपोकों के लिए नहीं, साहसी और शूरवीरों के लिए बनी है। हमें साहसी और निर्भीक होकर के ही इस संसार में जीना चाहिए।

प्रतिकूलताओं से लड़ने का साहस रखना और जब वे सामने आ जाएँ तो हिम्मत वाले पहलवान के समान उनको परास्त करने के लिए जुट जाना, यही बहादुरी का काम है। बहादुर को देखकर आधी विपत्ति अपने आप भाग जाती है। मनुष्य प्रयत्न करके प्रतिकूलताओं को निश्चय ही परास्त करं सकता है। अंधकार के बाद प्रकाश का आना जब निश्चित है तो विपत्ति ही सदा कैसे टिकी रह सकती है? हम हिम्मत बाँधें तो ईश्वर की मदद जरूर मिलेगी। परमात्मा सदा से प्रयत्नशीलों की, साहसी, विवेकवान और बहादुरों की सहायता करता रहा है, फिर हमारी क्यों न करेगा? शांति के बाद यदि अशांति की परिस्थिति आ धमकी तो परिवर्तन-चक्र इन्हें सदा थोड़े ही बना रहने देगा। अशांति के बाद शांति के क्षणों का, विपत्ति के बाद संपत्ति का आना भी उतना ही निश्चित है जितना रात के बाद दिन का आना है। फिर हमें निराशा क्यों हो! हम अशांत और आतंकित क्यों हों!

❐

चिंता में डूबे रहने से क्या फायदा?

चिंता एक विनाशक वृत्ति है, जो मनुष्य की शक्ति और समय का अनावश्यक मात्रा में क्षरण करती रहती है। जिस शक्ति के द्वारा मनुष्य अपना स्वास्थ्य सुधार सकता था, आजीविका कमा सकता था, विद्याध्ययन अथवा कोई उपयोगी कला सीख सकता था वह व्यर्थ ही बरबाद हो जाती है। जितने समय को वह शारीरिक, मानसिक, आर्थिक अथवा किसी अन्य प्रयोजन में, विकास के काम में लगा सकता था, उसे छोटी-छोटी बातों की चिंताओं में ही गँवाता रहता है। मनुष्य-जीवन किसी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए मिलता है, इसे छोटी-छोटी बातों की चिंताओं में गँवा देना समझदारी की बात नहीं। अपने जीवन लक्ष्य को समझना और उसमें अंत तक तत्परतापूर्वक लगे रहना तभी संभव हो सकता है जब चिंताओं से छुटकारा पाएँ, इनसे दूर रहें और इनसे क्षरित होने वाली शक्तियों को बचाकर अपने निर्दिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति में लगाएँ।

चिंताओं से मनुष्य की रचनात्मक क्रियाशक्ति में थोड़ी कमी हो जाती अथवा थोड़ा समय ही बरबाद होकर रह जाता तो भी विशेष हानि न थी। दैनिक कार्यों में चलने, उठने, बैठने और अन्य कई ऐसे कार्य होते हैं जिनमें निष्प्रयोजन कुछ शक्ति भी लग जाती है, कुछ समय भी। किंतु उसकी हानि भी वहाँ समाप्त हो जाती है। पर चिंताएँ अपने पीछे भी एक विषाक्त वातावरण बना देती हैं जो मनुष्य की जीवन-शक्ति का चिरकाल तक शोषण करती रहती हैं। इनसे जितना ही बचाव किया जाता है ये शहद की मक्खी की तरह उतना ही पीछा करतीं और अपने विषदंश चुभोती रहती हैं। मनुष्य चिंताओं के जाल में

फँसकर अपनी मौत के ही सरंजाम जुटाता रहता है। जीवन-मृत्यु, अकाल-मृत्यु की ओर तेजी से ले जाने वाली यह चिंताएँ ही होती हैं। किसी कवि ने लिखा है—

चिंता चगुल ही पर्‌यो तो न चिता को शङ्क।
यह सोखैं बूँदन जियत मुए जात वा अङ्क॥

चिता तो मुरदा को जलाती है, किंतु चिंता तो जीवित मनुष्य को तिल-तिल घुला कर मारती है।

चिंताओं से मस्तिष्क के अंतराल में काम करने वाली सेल व फाइवर शक्तियों से किस प्रकार जीवन-शक्ति का तड़ित क्षरण होता है इसका पता जर्मनी के डॉक्टरों ने एक प्रयोग से लगाया। किसी पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति को अचानक चिंताजनक समाचार सुनाया गया। इससे घबराकर वह उठने लगा तो उसे चक्कर आ गया और वह गिर गया। डॉक्टरों ने शारीरिक परीक्षा के बाद देखा कि उसकी इतनी शक्ति एक ही झटके में समाप्त हो गई जिससे वह एक सप्ताह तक लगातार श्रम कर सकता था। चिंताएँ मस्तिष्क को उत्तेजित करती हैं जिससे शक्ति का बुरी तरह अपव्यय होता रहता है। इससे मनुष्य के सौंदर्य, शारीरिक बल और ज्ञान का नाश होता रहता है।

चिंता जीवन की शत्रु है। शत्रु का काम होता है त्रास देना, भयभीत रखना और दाँव लगते ही आक्रमण करना। ठीक ऐसा ही काम चिंताएँ करती हैं। दिन-रात मनुष्य को घुलाती रहती हैं। रक्त, वीर्य, बल और बुद्धि का निरंतर शोषण करती रहती हैं। व्यक्ति को निराश बना देती हैं। इससे मनुष्य सदैव डरा-डरा सा बना रहता है। कुछ दिन ऐसी स्थिति बनी रहने से चिड़चिड़ापन, अर्द्धविक्षिप्तता तक की नौबत आ जाती है। स्थिति अधिक विकृत हो जाने पर मनुष्य के प्राण लेकर ही छोड़ती है। छोटी-सी बात को लेकर इतने बड़े दुष्परिणाम तक पहुँचने की बात कुछ असंगत लगती है, किंतु होता ऐसा ही है। यह

स्थिति बड़ी खतरनाक होती है। इसका किसी चिकित्सक के पास इलाज भी नहीं। इसका परिणाम अंततः काल मृत्यु ही होता है।

चिंताएँ आखिर आती क्यों हैं ? यह विचारणीय प्रश्न है। अधिक गहराई में जाकर देखें तो इनका आधार बड़ा ही टूटा-फूटा, सड़ा-गला सा लगता है। चिंताएँ आती नहीं, मनुष्य स्वयं उन्हें बुलाता है और अपने पास पालकर रखता है। चिंता का अर्थ है—किसी समस्या से हार मान लेना, अपने आप को पराजित घोषित कर देना। यह एक मनोविकार है जो मनुष्य की दुर्बलता प्रकट करता है। प्रस्तावित कठिनाई को अपनी शक्ति से बड़ी मान लेने के अतिरिक्त चिंताओं का और कोई भी अस्तित्व नहीं। खान-पान, रहन-सहन और सामाजिक व्यवहार की अनेकों चिंताएँ होती हैं, किंतु इनके आधार इतने छोटे होते हैं कि उन्हें जानने से हँसी आती है। अपना पड़ोसी अच्छा खाता-पीता है। उसकी नौकरी भी अच्छी है। पर खुद का भोजन बड़ा रूखा-सूखा होता है। वेतन भी कम मिलता है। इन्हीं बातों को विवशतापूर्वक देखने का अर्थ है—चिंता। दूसरा अच्छा खाता है तो क्या हुआ, कितने ही तो ऐसे हैं जो बेचारे एक समय ही भोजन पाते हैं। आपको केवल सौ रुपये ही वेतन मिलता है तो असंख्य ऐसे हैं जो दिन भर कठोर श्रम करके भी शाम तक बारह आने कमा पाते हैं। तब फिर यह चिंता क्यों ? इससे यही पता चलता है कि चिंताओं का आधार उतना बड़ा नहीं होता जितना लोग उसे महत्त्व देकर मान लिया करते हैं।

चिंताओं के द्वारा अपनी कार्यक्षमता घटा देना, जीवन में घबराहट उत्पन्न करना अल्प-विकसित बुद्धि वालों का काम है। यह आत्म-विश्वास की कमी का द्योतक है। इन्हें बढ़ाओ नहीं, दूर करो। यह आपके शत्रु हैं। इनके कारण पूरे मन से अपने विकास-पथ पर आप अग्रसर न हो सकेंगे। अधूरे मन से कभी अपनी क्षमता को दोष देते रहें,

कभी लक्ष्य प्राप्ति को बड़ा दुस्तर कार्य मानते रहें तो ये आपको गुलाम बना लेंगी। इससे सफलता की प्राप्ति में संदेह ही बना रहेगा। आशावाद और कर्मठता को अपने जीवन में धारण करने से वह आसुरी चिंताएँ अपने आप लौट जाएँगी। इनसे हार मान लेने का अर्थ है—जीवन के प्रति नैराश्य। इसका परिणाम है—पतन की ओर उन्मुख होना, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। इसलिए अपने जीवन को समुन्नत बनाने के लिए इन्हें सदैव दूर रखिए, अन्यथा ये असमय में ही खा जाने वाली डाकिनें हैं।

चिंताओं से बचाव का सबसे अच्छा साधन है—आध्यात्मिक धारणा। इस संसार में जो कुछ हो रहा है वह सब एक खेल मात्र है। किसी का अभिनय सुखद होता है, किसी का दु:खद। नाटक करने वाले अभिनेता यह जानते हैं कि यह सब स्टेज तक की है। रंगमंच से नीचे आ जाने पर सब अपने पुराने रूप में आ जाते हैं। जीवन की विभिन्न क्रियाओं को भी इसी प्रकार देखना और मानना चाहिए। यहाँ की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है, यहाँ का प्रत्येक पदार्थ नाशवान है। इसलिए इनके परिणामों की आसक्ति से दूर रहना ही श्रेयस्कर है। इससे चिंताओं से अपने आप छुटकारा मिल जाता है। विशुद्ध कर्त्तव्य-भावना से यहाँ का प्रत्येक कार्य, क्रिया, व्यापार चलते रहना ही अच्छा है। समस्याओं से अपनी सामर्थ्य को छोटा मान लेना चिंता का कारण है। आप अपनी समस्याओं को संयोग या पार्ट मात्र मानिए। उन्हें निकालिए तो सही किंतु कठिनाइयों की चिंता न कीजिए तो ही जीवन लक्ष्य की ओर सफलतापूर्वक अग्रसर हो जाना संभव होगा। चिंताओं के चक्कर में ही पड़े रहे तो आपका विचार क्षेत्र भी संकुचित बना रहेगा। विचारों का दायरा न बढ़ा तो वह स्थिति कहाँ बन पड़ेगी जिसके लिए अमूल्य मानव-जीवन मिला है।

चिंताएँ जीवन-विकास में गतिरोध उत्पन्न करती हैं। मनुष्य की कार्यक्षमता को पंगु बना देती हैं। इससे मानवीय-विकास का मार्ग भी रुक जाता है। मनुष्य एक अपनी अलग दुनिया बना लेता है, इसे चिंताओं की दुनिया कहना ही उपयुक्त लगता है। जब तक जीवात्मा इस छोटे से क्रिया-क्षेत्र में फँसा रहता है तब तक वह अपने शाश्वत स्वरूप को समझ नहीं पाती। लघु से महत की आकांक्षा कोरी कल्पना मात्र बनी रहती है। सफलता का मूल अंग एक ही है कि अपनी चिंताओं से छुटकारा पाइए। तभी वह स्थिति बन सकती है, जब अपने जीवन की दिशा में भी कुछ प्रगति की जा सके।

❐

चिंताओं से छुटकारे का मार्ग

जिन कारणों और अभावों से लोग दुखी रहते हैं उनके मूल तक जाएँ तो यह पता चलता है कि मनुष्य को किसी प्रकार का अभाव उतना दुःख नहीं देता जितना उसकी चिंतित रहने की प्रवृत्ति दुःख देती है। किसी विषय को लेकर अकारण ही लोग उस पर आशंकापूर्ण कल्पनाएँ गढ़ते रहते हैं। अगले वर्ष बच्ची की शादी करनी है तो अभी से सोचने लगे कि दहेज के लिए रुपया कहाँ से आएगा? गल्ले और कपड़ों का प्रबंध कैसे होगा? घर गिर रहा है, रिश्तेदार संबंधी आएँगे तो क्या कहेंगे? उसकी भी मरम्मत करवानी है,इधर नौकरी में भी तरक्की नहीं हो रही है, बच्चे की फीस के पैसे भी देने हैं आदि अनेकों प्रकार से वह एक ही विषय को लेकर सोच-सोच कर दुखी रहता है। इस प्रकार चिंताओं में जलते रहना आज संक्रामक रोग-सा बन गया है।

चिंता एक प्रबल मनोव्याधि है। इससे मानसिक शक्तियों का नाश होता है और शरीर पर दूषित प्रभाव पड़ता है। इससे लोगों का मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य गिर जता है। 'स्पाट वरीइंग एंड गेट वेल' पुस्तक के विद्वान डॉ. एडबर्ड पोडोलस्की ने अपनी पुस्तक में लिखा है— "चिंता से हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, गठिया, सरदी, जुकाम तथा बहुमूत्र आदि रोग हो जाते हैं।" इस कारण इन रोगों से मुक्ति दिलाने वाले साधन प्रयोग में अवश्य लाने चाहिए।

डॉ. ऐलिक्श कैरेल का कथन है कि जो लोग चिंताओं से छुटकारे का मार्ग नहीं जानते वे जवानी में ही मर जाते हैं। चिंता वास्तव

में एक ऐसा रोग है जो अंदर ही अंदर जलाता रहता है और सारे रक्त-मांस को जलाकर राख कर देता है। लोग समझते हैं कि उन्हें कोई शारीरिक व्याधि लग गई है किंतु यह होता मानसिक चिंताओं के कारण ही है। इससे जीवन-शक्ति का नाश हो जाता है, स्वास्थ्य गिर जाता है और मौत की स्थिति बनते देर नहीं लगती। मानवीय-विकास की सारी संभावनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

जिन्हें इस जीवन में किसी प्रकार के सुख की आकांक्षा हो, जिन्हें सफलता प्राप्त करनी हो उन्हें सर्वप्रथम चिंता-रहित बनने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे अपनी शक्ति सुरक्षित रहेगी। बचाई हुई शक्ति किसी भी कार्य में लगाने से वहीं सफलता के दर्शन होने लगते हैं। चिंता-रहित जीवन सफलता का स्रोत माना जाता है।

चिंताओं से मुक्ति पाने का सरल उपाय यह है कि सदैव कार्य करते रहें। दत्तचित्त होकर अपने काम में जुटे रहने से सारा ध्यान काम की सफलता पर चला जाता है। चित्त विविध अनुभवों में उलझा रहता है। जब तक अपना काम भली प्रकार पूरा न हो जाए या जब तक पूर्ण सफलता न मिल जाए तब तक सारी मानसिक चेष्टाओं को उसी में लगाए रहेंगे तो चिंताएँ आप ही दूर भाग जाएँगी। अकर्मण्य बने रहने से ही अनावश्यक सोचने-विचारने का समय निकलता है। कहावत है—'खाली दिमाग शैतान का घर।' कोई काम न होगा तो चिंताएँ आएँगी, बुरे-बुरे विचार उठेंगे और उनकी प्रतिक्रिया भी शरीर और मन पर होगी ही। इसलिए किसी न किसी काम में हर समय लगे रहना आवश्यक है।

यह देखा जाता है कि लोग बीती हुई घटनाओं की भयंकर कल्पना में अपनी शक्ति और समय का दुरुपयोग करते रहते हैं। जो हो चुका वह वापस लौटने का नहीं, फिर उस पर अकारण विलाप करने से

क्या फायदा ? जो हो गया उसे भूलकर भविष्य के सुखद परिणामों की प्राप्ति के लिए एकांत मन से लगे रहना ही श्रेयस्कर होता है। इसी प्रकार आने वाली घटनाओं से संघर्ष करने के लिए उत्साह पैदा कीजिए। देखिये आपकी शक्ति भी कितनी प्रबल है।

हिटलर कहा करता था—अच्छे से अच्छे भविष्य की कल्पना करनी चाहिए और खराब से खराब परिणाम भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए। इससे अकारण उठने वाली चिंताओं से छुटकारा मिलता है। एक पहलवान की इच्छा थी कि वह दूसरे को पछाड़ेगा। इस आशा से उसने स्वास्थ्य का निर्माण किया। वर्षों तक दंड-बैठक का अभ्यास किया। शक्तिवर्द्धक पौष्टिक आहार जुटाया तब कहीं जाकर दूसरे पहलवान से कुश्ती लड़ने के योग्य हुआ। फिर भी दाँव-पेंच न बन पड़े और कुश्ती में हार गया। इससे यह नहीं माना जा सकता कि उसका श्रम व्यर्थ गया। उसके परिणाम तो सुंदर स्वास्थ्य और आरोग्य के रूप में मिले ही। इसके लिए आने वाले भयंकर परिणामों के प्रति पहले से साहस पैदा करना चाहिए ताकि बुरे परिणाम की दुश्चिंता से बचे रहें। सुखद कल्पना के सत्परिणाम तो आपको मिलेंगे ही, उनसे आपको कोई वंचित न कर सकेगा।

अकारण चिंतित रहने का एक कारण यह भी है कि लोग बिना सोचे-समझे किसी बात की पूर्ण सफलता का निर्णय कर लेते हैं। यह निर्णय आपके पक्ष में आए ही इसके लिए श्रम, उद्योग और चतुराई भी अपेक्षित थी। फिर यदि परिस्थितियाँ नहीं बन पड़ी तो भी अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में बाधा आ सकती है। विपरीत परिणाम भी उपस्थित हो सकता है। ऐसे समय प्रायः लोग अपना धैर्य खो बैठते हैं और शोक-संताप करके बैठे-बैठे चिंता या पश्चात्ताप करते रहते हैं। बार-बार अपनी असफलता पर ही दुःख होता है, इसलिए पहले से ही पूर्व सफलता का निर्णय कर लेने की भूल न करें वरन यदि परिस्थितिवश

असफलता का सामना करना पड़े तो उसके लिए भी सदैव तैयार रहना चाहिए।

परिस्थितिवश यदि ऐसी कोई विपरीत घटना जीवन में घटित होती है तो आप अपने मित्रों, शुभ-चिंतकों और समझदार लोगों से इस विषय में विचार-विमर्श कीजिए। इससे संभव है आपकी कठिनाइयों का कोई दूसरा हल निकल सके, किंतु यदि यह अच्छी प्रकार समझ लिया गया है कि यह कठिनाई घटती या मिटती दिखाई न पड़े तो भी उद्विग्न न हों। तब मानसिक शांति के लिए उस चिंता के विषय से चित्त हटाकर अपना ध्यान किसी दूसरे विषय में लगाने का प्रयत्न करना चाहिए।

किसी के प्रियजन की आकस्मिक मृत्यु हो गई है तो यह संकट ऐसा है जिसे सुधारा नहीं जा सकता है, पर चिंता करने के दुष्परिणामों से बचने के लिए कोई ऐसा रचनात्मक उपाय प्रयोग में ला सकते हैं, जिससे शोक का वातावरण बदल जाए और चित्त अशांत रहने की अपेक्षा किसी संतोष दे सकने वाले काम में लग जाए। किसी की रुचि धार्मिक कथा-साहित्य में होती है उन्हें गीता, रामायण आदि किसी पुस्तक के स्वाध्याय से अन्त:करण की तुष्टि करनी चाहिए। जिन्हें प्राकृतिक जीवन प्यारा लगता हो वे ऐसा भी कर सकते हैं कि कुछ दिन तक कहीं तीर्थ यात्रा आदि में समय बिताएँ। अपनी रुचि के अनुसार अपनी शांति प्राप्त करने के प्रयत्न करें तो कोई साधन ऐसे बन जाएँगे जिससे चिंताजनक परिस्थिति में भी अपना मानसिक संतुलन बनाए रख सकें।

चिंता एक संक्रामक रोग है। जब हम किसी ऐसे व्यक्ति के पास बैठते हैं तो उसकी निराशा के तत्त्व खींचकर हम भी निरुत्साहित होने लगते हैं। ऐसे लोग सदैव भाग्य को दोष देते रहते हैं। 'हम अभागे हैं', हमारा जीवन निरर्थक गया, घर न बनवा सके, जायदाद न खरीद पाए, हम पर परमात्मा नाखुश है आदि निराशाजनक भावनाओं से वे अपना

भाग्य तो बिगाड़ते ही हैं अपने संपर्क में आने वालों का भविष्य भी अंधकारमय कर देते हैं।

आप सुंदर भविष्य की कल्पना कीजिए। अधिक योग्य, चरित्रवान, स्वस्थ और आर्थिक दृष्टि से संपन्न बनने की अनेकों नई-नई योजनाएँ बनाइए और अपनी परिस्थितियों का उनके साथ मेल होने दीजिए। कोई न कोई योजना जरूर ऐसी आएगी जो आपके विकास में सहायक बनेगी। महापुरुष ईसा ने कहा है—"कल के लिए चिंता मत करो, वरन सुनियोजित प्रयत्न करो ताकि आपका कल अधिक सुनहरा हो।" अच्छे चिंतन से, संग्रहीत सांसारिक अनुभवों के सहारे, अधिक उत्साहपूर्वक कार्य करने की शक्ति जाग्रत होती है। पश्चात्ताप और आत्मग्लानि की दुश्चिंता से कार्यनिष्ठा, साहस, शक्ति और कुशलता का नाश होता है। आप सदैव इनसे बचने का प्रयत्न कीजिए। जीवन के प्रति आशंकापूर्ण भावनाएँ कदापि न करें। सदैव भविष्य के मंगलमय होने की कल्पना किया करें। इसी में सुख है, शांति है, श्रेय है। ❐

भय का कारण और निवारण

डर का सबसे बड़ा कारण है अज्ञान। जिसे हम ठीक तरह नहीं जानते उससे प्रायः डरा करते हैं। सृष्टि के आरंभ में आदिम मनुष्य सूर्य, चंद्र, समुद्र, बादल, बिजली, नदी, पर्वत, आँधी, आग, सर्प का स्वरूप ठीक तरह समझ न पाया था, इसलिए चेतना विकास के प्रथम चरण में उनकी स्थिति, शक्ति और मर्यादा की समुचित जानकारी न थी, फलस्वरूप उनसे डर लगा। देवता के रूप में उन्हें कल्पित किया गया और अनेक पूजा विधानों से उन्हें संतुष्ट करने का प्रयत्न किया गया ताकि वे अपना कोई अहित न करें। मृत्यु के उपरांत का जीवन अभी भी रहस्यमय है पर पूर्वकाल में और भी रहस्यमय बना हुआ था। इस अज्ञान ने प्रत्येक मृतक को भूत-प्रेत की मान्यता प्रदान कर दी और आकस्मिक दुर्घटनाओं,विपत्तियों एवं बीमारियों का मूल कारण विदित न होने से उन्हें भूत की करतूत समझ लिया गया। प्रायः ऐतिहासिक काल में मनुष्य की मनोभूमि का अधिकांश भाग इन देवताओं और भूतों का संतोष समाधान करने में व्यतीत होता था।

ज्ञान का जैसे-जैसे विकास हुआ वे भय छूट गए। बीमार होते ही भूत को बलि चढ़ाने की तैयारी ही जिनके मस्तिष्क में एकमात्र उपाय सूझता हो ऐसे लोग अब बहुत थोड़े हैं, वे सभ्य समाज में उपहासास्पद माने जाते हैं। इसी प्रकार अलग-अलग सत्ता वाले, एक दूसरे से लड़ने-झगड़ने और ईर्ष्या, द्वेष करने वाले देवताओं के स्थान पर अब इन्हें एक ही ईश्वरीय शक्ति के विभिन्न काम माना जाने लगा है। ग्रह-नक्षत्रों की विद्या की सही जानकारी जैसे-जैसे बढ़ रही है वैसे-वैसे शनि और राहु की अनिष्टकर ग्रह दशा का आतंक समाप्त होता चला जा रहा है।

अधिकांश भय अवास्तविक होते हैं। साँप से लोग आमतौर से डरा करते हैं पर सही बात यह है कि केवल सत्रह प्रतिशत साँप ही ऐसे होते हैं जिनमें मारक विष रहता है। यह वास्तविकता जिन्हें विदित होती है,जो साँपों के स्वभाव की गहरी जानकारी रखते हैं वे उनसे जरा भी नहीं डरते, वरन कई बार तो उनसे अपना मनोरंजन लाभ भी करते हैं। सरकस कर्मचारी खूँखार जानवरों के बारे में अधिक जानकारी होने के कारण उनसे डरना तो दूर उलटा अचरज भरे काम कराते रहते हैं। घने जंगलों में सिंह-व्याघ्रों के बीच निवास करने वाले आदिवासी उनसे जरा भी नहीं डरते बल्कि आँख मिचौनी खेलते रहते हैं जबकि सामान्य लोगों को सिंह, व्याघ्र की बात सुनने से भी डर लगने लगता है।

अजनबी आदमी को देखकर तरह-तरह की आशंकाएँ मन में उठती हैं, पर जब इसका पूरा परिचय हो जाता है तो पूर्व आशंका मित्रता में बदल जाती हैं। अँधेरे में जाते समय डर केवल इसलिए लगता है कि यहाँ क्या कुछ होगा, इसकी जानकारी न होने से चित्त में अनेक तरह की डरावनी बातें उठती हैं। नदी में थोड़ा पानी होने पर भी अनजान आदमी उसमें प्रवेश करते हुए दुर्घटना से सशंकित रहता है। सही जानकारी होने पर डर सहज ही दूर होता है। प्रकाश में तो सुनसान में जाते हुए और नदी के उथले पानी का सही पता लगाते हुए उसमें प्रवेश करते हुए किसी को कोई झिझक या भय महसूस नहीं होता।

इस संसार में लगभग सारे डर अज्ञानमूलक हैं। हानि, घाटा, दुर्घटना, असफलता, आक्रमण, दुर्भाग्य, ग्रह-दशा, भूत आदि की आशंका से जितना डरा जाता है वस्तुत: उसका सौवाँ भाग भी वास्तविक नहीं होता। अज्ञान ही कायरता या भीरुता का रूप धारणकर मनुष्य को भयभीत करता रहता है। जिसे जितना वास्तविक ज्ञान है वह उतना ही निर्भय रहेगा। तत्त्वज्ञानी की पहचान यह है कि वह पूर्णतया निर्भय हो। ज्ञान की उपासना को अध्यात्म मार्ग का प्रथम सोपान इसलिए माना गया है कि उसके आधार पर मनुष्य सब प्रकार के भय और संशयों से

छुटकारा पाकर अभीष्ट लक्ष्य की ओर अपनी मानसिक शक्तियों को लगा सकने में समर्थ होता है। वह अज्ञानी जिसे अनेक प्रकार के भय सताते रहते हैं, अपनी मानसिक क्षमता का अधिकांश भाग उसी गोरख-धंधे में खो बैठता है, फिर आत्म-कल्याण जैसे श्रेष्ठ कार्य के लिए उसके पास मनोबल बचेगा ही कैसे ?

ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होने से मनुष्य संसार की हर वस्तु का स्वरूप समझ जाता है, तब उसे उनमें डरने लायक कुछ भी कारण दिखाई नहीं पड़ता। निर्भीक लोग उन परिस्थितियों में भी हँसते, प्रसन्नचित्त रहते और मानसिक संतुलन बनाए रहते देखे जाते हैं, जिनमें कि साधारण मनुष्य आशंकाओं और कुकल्पनाओं से भयभीत होकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ बन जाते हैं। संसार के महापुरुष एवं राजनेता अगणित महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वों और अशुभ संभावनाओं से घिरे रहते हैं। समस्याओं का हल वे सोचते हैं और जो संभव है वह करते हैं। पर यह होता तभी है जब मानसिक संतुलन को सही रखने की, उत्तेजित न होने की क्षमता विद्यमान हो। श्रेष्ठ और निकृष्ट व्यक्तियों में धैर्य और अधीरता का ही अंतर रहता है। जिसने इस संसार को एक नाटक मात्र समझ लिया है वह अपना सर्वोत्कृष्ट अभिनय करने मात्र का ध्यान रखता है। जैसी परिस्थितियाँ आती हैं उनके अनुरूप परिवर्तन करने और ढलने की क्षमता जिसने संपादित कर ली, वे संसार में समस्त परिजनों को एक क्रीड़ा-कौतुक मात्र समझते हैं। डरना उन्हें मानवीय दुर्बलता और अज्ञान का एक उपहासास्पद कारण प्रतीत होता है। जो डरते हैं वे कर कुछ नहीं पाते। डर के मारे अधमरे बने रहने वाले, आशंकाओं और संज्ञाओं से उद्विग्न रहने वाले व्यक्ति अर्द्ध मूर्च्छित, अर्द्ध मृतक स्थितियों में पड़े हुए निकृष्ट और असफल जीवन ही किसी प्रकार पूरा करते हैं।

जिसे अपनी शक्ति का सही ज्ञान होता है वह उतने बड़े कदम उठाता है, जो अपनी सामर्थ्य और मर्यादा के अंतर्गत हो। शेखचिल्ली इसलिए असफल हुआ कि वह अपनी अर्थ-व्यवस्था के क्रमिक

विकास और योजनाओं की पूर्ति में लगने वाले समय और श्रम के बारे में भ्रम-ग्रस्त बना रहा। किस सफलता के लिए कितनी तैयारी, मेहनत और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, यह जानकर कोई व्यक्ति अपनी गतिविधियों को निर्धारित करे तो उसे कदाचित ही कभी असफलता का मुँह देखना पड़े।

बड़े से बड़ा भय मृत्यु का होता है, पर यदि उसे वस्त्र परिवर्तन जैसी जीव के लिए भूतकाल में करोड़ों बार घटित हुई एक सामान्य प्रक्रिया मान लिया जाए तो मरने का अवसर आने पर भी मनुष्य अपना साहस बनाए रह सकता है। मृत्यु के संघर्ष में देर तक लड़ सकता है। कम से कम शांत चित्त से ईश्वर का नाम लेते हुए तो मर ही सकता है। मृत्यु का स्वरूप ठीक तरह समझ में न आने से ही त्रास मिलता है अन्यथा मृत्युदंड की आज्ञा सुनकर फाँसी लगने के दिन तक खुशी से सत्रह से सत्तर पौंड वजन बढ़ा लेने वाले क्रांतिकारियों के उदाहरण सुनने को मिलते हैं।

उचित-अनुचित का विवेक जाग्रत होने पर भी मनुष्य निश्चिंत हो सकता है। उसके सामने लक्ष्य और मार्ग स्पष्ट रहने से न तो उलझन रहती है और न परेशानी। हवा में उड़ते हुए पत्ते की तरह जो चारों ओर मन डुलाता है उसे सफलता-असफलता का भय बना रहता है। सच्ची निर्भयता उसे ही मिलती है जिसके सामने अपना कर्त्तव्य ही प्रधान है। परिणाम को अधिक महत्त्व देने वाला व्यक्ति असफलता को न तो अधिक महत्त्व देता है और न उससे डरता है।

ईश्वर-विश्वास निर्भयता का सर्वोपरि उपाय है। पुलिस गारद के पहरे में रहने वाले को जब आक्रमणकारी शत्रुओं से निश्चितता मिल जाती है, सुरक्षा अनुभव होती है तो सर्वशक्तिमान परमात्मा को अपना साथी-सहचर बना लेने वाले के लिए डरने की गुंजाइश कहाँ रह जाती है। जिसने धर्म को अपना आधार बना लिया उसका भविष्य अंधकारमय हो ही नहीं सकता, फिर किसी से भी डरने की ऐसे व्यक्ति के लिए बात ही क्या रह जाती है।

❐

हम किसी से क्यों डरें ?

परमात्मा ने अनेक विभूतियों से सुसज्जित कर मनुष्य को इस धरती में भेजा है। जिन मंगलकारी उपहारों को लेकर वह इस वसुंधरा में अवतीर्ण होता है, वे इतने हैं कि एक-एक की खोज और गणना करने बैठें तो अतुल श्रम व समय लगाना पड़े। भावनाओं को व्यक्त करने के लिए जैसी बुद्धि व वाणी उसे मिली है, संसार के किसी अन्य जीव-जंतु को उपलब्ध नहीं। संसार की सारी मशीनें एक ही शरीर के सम्मुख हतप्रभ हैं। खाने-पीने, चलने-फिरने को स्वचालित मशीन और कोई भी नहीं, जैसी मनुष्य को प्राप्त है। पारस्परिक प्रेम और स्नेह,त्याग और आत्मोत्सर्ग, सौजन्य और सौहार्द, संगठन और सहानुभूति के बल पर वह चाहे तो इसी धरती पर स्वर्ग उतारकर रख दे। इनसे भी बढ़कर श्रेष्ठ व अनुपम वस्तु उसे मिली है। वह है आत्मिक बल की अनुपम संपदा। इसे प्राप्त कर मनुष्य सचमुच देवता बन जाता है।

किंतु कार्य-जगत में जब हम इन उपहारों में से एक को भी अधिकतर जीवनों में फलित होते नहीं देखते तो बड़ा आश्चर्य होता है। इन महत्त्वपूर्ण अनुदानों का स्वामी होकर भी उसकी दीनता, हीनता देखकर बड़ी निराशा होती है। लगता है उसने इनका दुरुपयोग कर लिया। बजाए सुखी व समुन्नत जीवन बिताने के बेचारा क्लेश और क्लांत परिस्थितियों में पड़ा किसी प्रकार जीवन के दिन पूरे करता रहता है। इसका एक प्रबल कारण है भय। भय से बढ़कर अनिष्टकारी दूसरा कोई मनोविकार नहीं। यह ऐसा महान घातक शत्रु है, जो व्यक्ति की विकास-विजय को पराजय में, आशा को निराशा में, उन्नति को अवनति में क्षणभर में बदलकर रख देता है।

भय के दो रूप हैं—एक क्रियात्मक, दूसरा भावनात्मक। पहला कर्त्ता और परिस्थिति के स्थूल संयोग व संघर्ष की आशंका से होता है।

रात के अंधकार में डर जाना, चोर, बदमाश आदि किसी आततायी के आक्रमण आदि की आशंका को इस कोटि में माना जाता है। इससे शारीरिक, आर्थिक व व्यावसायिक क्षति संभव है। किंतु दूसरी प्रकार का भय जो मनुष्य को देर तक उत्पीड़ित करता, घुलाता रहता है वह है मन का भय। इसके पीछे भी आधार क्रियात्मक हो सकते हैं किंतु ऐसे भय अधिकांश निराधार ही होते हैं। पहले से उतना नुकसान नहीं होता, क्योंकि वे घटना के अनंतर ही समाप्त हो जाते हैं। किंतु निरंतर शारीरिक व मानसिक शक्तियों का शोषण करने वाला तो यह मन का भय ही होता है।

भयभीत होने का अर्थ है—आत्म-बल की कमी, आत्म-विश्वास की न्यूनता। आने वाली कठिनाई या दुर्घटना से आतंकित होने का एक ही अर्थ होता है कि उनसे लड़ने-जूझने और संघर्ष करने का साहस नहीं है। यह मनुष्य का एक बड़ा दुर्गुण है कि वह बिना जाने-पहचाने केवल कागजी कंस से, कपोल कल्पित मान्यताओं से भयभीत रहे। भय की परिस्थिति के मूल तक पहुँचकर देखें तो वास्तविकता कुछ भी न निकलेगी। मानसिक दुर्बलताओं के अतिरिक्त भय का और कोई कारण नहीं। यदि कुछ हो भी तो उसे अपने सुदृढ़ मनोबल के द्वारा, विवेक और बुद्धि के माध्यम से सुलझाया जाना संभव है।

एक आदमी अँधेरे में पाँव धरता है तो आगे भूत खड़ा दिखाई देता है। बेचारा डर जाता है। ओंठ सूख जाते हैं, छाती धड़कने लगती है। धैर्य छूटा कि भूत सवार हुआ। फिर जैसी कल्पना करते जाते हैं, भूत वैसी ही क्रियाएँ करने लगता है। पर एक दूसरा व्यक्ति थोड़ी हिम्मत बाँधता है, सारा साहस बटोरकर आगे बढ़ता है, सोचता है देखें यह भूत भी क्या बला है? आगे बढ़ता है तो हवा के कारण हिलती-डुलती झाड़ी के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता है। तब उसे पता चल जाता है भूत और कुछ नहीं अपना ही मानस-पुत्र है, अपनी ही

कल्पना की तस्वीर है। डर जाने के अस्सी फीसदी कारण ऐसे ही होते हैं। कई बार ऐसे समय आ सकते हैं, जब कोई हिंसक जीव या आततायी पुरुष द्वारा ऐसी घटना उपस्थित हो। पर यदि वहाँ भी मनुष्य साहस और शौर्य से काम ले तो उन्हें भी पार कर सकता है। कहावत है—'हिम्मते मरदाँ मददे खुदा।' अनेक ऐसी घटनाएँ घटित हुई हैं, जब छोटे-छोटे बालकों ने खूँखार हिंसक जानवरों का मुकाबला करके उनसे अपनी आत्मरक्षा की है। भयभीत होने का तो एक ही अर्थ है—अपने प्रतिद्वंद्वी के आक्रमण के सामने सिर झुका देना। डर जाना जान-बूझकर अपने आपको आपत्तियों के जाल में फँसा देना है।

छोटे-छोटे जीव-जंतु, पशु-पक्षी घोर जंगलों में भी निर्भय विचरण करते रहते हैं। अनेक भयानक परिस्थितियाँ होते हुए भी उन्हें इस तरह निर्भीक घूमते देखते हैं तो मनुष्य की क्षमता पर, शारीरिक व मानसिक शक्ति पर संदेह होने लगता है।

भय मनुष्य की योग्यता कुंठित कर देने का प्रमुख कारण है। मानवीय योग्यताओं को देखते हुए यह आशा की जाती है कि लोग दिन प्रतिदिन उन्नति की ओर, विकास की ओर बढ़ते चले जाएँ। आज जिस स्थिति में हैं कल उससे बेहतर स्थिति में हों। आज की अपेक्षा कल कुछ अधिक धनवान, बलवान, गुणी एवं शिक्षित हों। किंतु इस तरह भयभीत रहकर अपनी विकास-गति को शिथिल एवं लुंज-पुंज कर डालने की बात उपहासास्पद-सी लगती है। यह सब इसलिए होता है कि आने वाली घटनाओं तथा परिस्थितियों को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं और अपनी शक्तियों को उनसे कमजोर मानते हैं। इससे पराक्रम तथा कर्त्तव्य-निष्ठा का ह्रास होता है। जिस कर्म के किए जाने की यथार्थ आवश्यकता थी वह नहीं हो पाता। कई बार तो उसके स्थान पर अनुचित कार्य तक होते देखे जाते हैं। डरपोक मन, कायरता और सशंकित रहने की विनाशक वृत्तियों के रहते कोई महत्त्वपूर्ण कार्य

पूरा कर पाने में समर्थ नहीं हो सकता। सफलता प्राप्त करनी हो तो भय रहित होकर उस कार्य में जुटना पड़ेगा अन्यथा मानसिक चेष्टाओं में वह एकाग्रता, लगन एवं तत्परता न बन पड़ेगी जिसकी कार्य-पूर्ति के लिए आवश्यकता अनुभव की गई थी। छिन्न-भिन्न एवं दुर्बल मनोबल से कोई कार्य पूरे नहीं होते। इसलिए पहले साहस का अनुसरण करना होता है।

भय सफलता का सबसे बड़ा बाधक है। साहसी और हिम्मतवर व्यक्ति हजार कठिनाइयों में भी विचलित नहीं होते। जीवन के किसी भी क्षेत्र में व्यवस्था एवं क्रम बनाए रखने के लिए सुदृढ़ मनोबल एवं साहसी होने की अत्यंत आवश्यकता है। इनके अभाव में पग-पग पर भय उत्पादक परिस्थितियाँ रास्ता रोकतीं और पीछे लौटने को मजबूर कर देती हैं। विकास की गाड़ी रुके नहीं, सफलता की मंजिल तक पहुँचने में संदेह न रहे, इसके लिए भय-भीरुता को छोड़ना पड़ेगा। परिस्थितियों से संघर्ष करने की हिम्मत करनी पड़ेगी। तभी किसी महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष तक पहुँचना संभव हो सकेगा।

❐

सुखी न भयऊँ 'अभय' की नाईं

घर में प्रचुर संपत्ति है। सुंदर मकान, आज्ञाकारिणी स्त्री, स्वामिभक्त सेवक, सज्जन परिवार—सभी कुछ है। शरीर भी पूर्ण स्वस्थ और बलिष्ठ है, पर जिसके जीवन में सदैव भय और आतंक छाया रहता है उसे कभी सुखी न कहेंगे। भय संसार में सबसे बड़ा दु:ख है। जिन्हें संसार में रहते हुए यहाँ की परिस्थितियों का भय नहीं हो, तो वे भी मृत्यु की कल्पना से काँप उठते हैं। इसलिए यह निश्चित ठहरता है कि अभय होने के सदृश सुख इस संसार में नहीं है। भय-विमुख होना मनुष्य का सबसे बड़ा सौभाग्य है।

भय के लिए कारण निर्दिष्ट होना जरूरी नहीं है। मानसिक कमजोरी, दु:ख या हानि की काल्पनिक आशंका से ही प्राय: लोग भयभीत रहते हैं। सही कारण तो बहुत थोड़े होते हैं। कोई सह-कर्मचारी इतना कह दे कि आप नौकरी से निकाल दिए जाएँगे, इतने ही से आप डरने लगते हैं। कोई मूर्ख पंडित कह दे कि अमुक नक्षत्र में अतिवृष्टि योग है, बस फसल नष्ट होने की आशंका से किसानों का दम फूलने लगता है। नौकरी छूट ही जाएगी या जल गिरेगा ही, यह बात यद्यपि निराधार है, केवल अपनी कल्पना में ऐसा सत्य मान लिया है, इसी के कारण भयभीत होते हैं। इस अवास्तविक भय का कारण मनुष्य की मानसिक कमजोरी है, इसका निराकरण भी संभव है। मनुष्य इसे मिटा भी सकता है।

परिस्थितियों या आशंकाओं के विरुद्ध मोर्चा लेने की शक्ति हो तो भय मिट सकता है। इसके लिए हृदय में दृढ़ता और साहस चाहिए। १८१२ ई. में जब अँगरेजों और अमरीकनों में युद्ध चल रहा था तो 'सीचिवे भास' नामक बस्ती के पास समुद्र में अँगरेजों का जहाज

दिखाई दिया। उसमें से कुछ सिपाही छोटी-छोटी किश्तियों में बैठकर बस्ती की ओर बढ़ने लगे। यह लोग गाँव को जला देंगे और हमें मार डालेंगे, इस भय से ग्रामवासी अपने-अपने हथियार रखते हुए भी पहाड़ियों के पीछे छिप गए। बारहवर्षीय लड़की से यह कायरपन सहन न हुआ, वह अकेली युद्ध भी नहीं कर सकती थी। वह कहीं से ढोल उठा लाई और एक जगह छुपकर उसे जोर-जोर से पीटने लगी। उसकी योजना सच निकली। छुपे हुए ग्रामवासियों ने समझा हमारे सिपाही आ गए हैं अत: निकल कर अँगरेजों पर हमला कर दिया। अँगरेज डरकर भाग गए। साहस ही वस्तुत: भय को पराजित करता है। इसके लिए मानसिक कमजोरियों का परित्याग होना चाहिए। परिस्थिति से घबरा जाने के कारण ही लोगों को हानि उठानी पड़ती है।

अनहोनी बात की कल्पना यदि आपके मस्तिष्क में आती है तो उसका एक भययुक्त चित्र अपने आप में दिखाई देने लगता है, इसी से डर जाते हैं। ऐसे अवसर आने पर वस्तुस्थिति का निराकरण तत्काल कर लेना चाहिए, क्योंकि जब तक यह कल्पना आपके मस्तिष्क में बनी रहेगी तब तक आप कोई दूसरा काम भी न कर सकेंगे। अँधेरी रात में घर में सोए हैं, ऐसी शंका होती है कि छत पर कोई है। 'चोर ही होगा' यह कल्पना अधिक दृढ़ हो जाती है। बस आपकी हिम्मत छूट जाती है और डर जाते हैं। थोड़ा साहस कीजिए और उठिए, चाहें तो हाथ में लाठी उठा लीजिए। ऊपर तक हो आइए, आपकी परेशानी दूर हो जाएगी, चोर ही हुआ तो वह आपकी आहट पाते ही भागेगा। आपकी संपत्ति भी बच जाएगी और भय की दशा भी दूर हो जाएगी। काल्पनिक भय या आशंकाजन्य भय तत्काल निराकरण से ही दूर हो जाता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करें तो यह निष्कर्ष निकलता है— **'द्वितीया भयं भवति।'** अर्थात परमात्मा को भूलकर अन्य वस्तुओं के

साथ लगाव रखने के कारण ही भय होता है। मनुष्य अपने शाश्वत स्वरूप को विस्मृत करके शरीर और उसके हितों के प्रति जितना अधिक आसक्त होता है, उसे दुःख और मृत्यु की आशंका उतना ही भयाकुल बनाती है। हममें से ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है, जो शरीर की नश्वरता और मृत्यु की असंदिग्ध संभावना को स्वीकार न करता हो। यह एक तथ्य है, जो मनुष्य को शिक्षा देना चाहता है कि वह शरीर से विलग कोई अविनाशी तत्त्व है। जन्म और मरण के नित्य-कर्मों से यह स्पष्ट भी हो जाता है कि मनुष्य आध्यात्मिक दृष्टि से अविनाशी तत्त्व है। अतः उसे मृत्यु-भय से कदापि विचलित नहीं रहना चाहिए।

शरीर आपका साधन मात्र है। यह आपके कल्याण और सांसारिक सुखोपभोग के लिए मिला है। किंतु सच्चा सुख आपको तभी मिलेगा जब आपको अपनी आत्म-शक्ति की पहचान हो जाएगी।

❐❐

हमारा युग निर्माण सत्संकल्प

- ✧ हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।
- ✧ शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।
- ✧ मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।
- ✧ इंद्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का सतत अभ्यास करेंगे।
- ✧ अपने आपको समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।
- ✧ मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।
- ✧ समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।
- ✧ चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।
- ✧ अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।
- ✧ मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।
- ✧ दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं।
- ✧ नर-नारी के प्रति परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।
- ✧ संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।
- ✧ परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे।
- ✧ सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।
- ✧ राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, संप्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।
- ✧ मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है—इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनाएँगे, तो युग अवश्य बदलेगा।
- ✧ 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा', 'हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा' इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।

❐❐

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)